

स्वयंसेवी संगठनों से सावधान जनता क्लाज फैट चोगे में शैतान छुपा है

अभिनव सिन्हा

स्वयंसेवी संगठन या गैर सरकारी संगठन (एन.जी.ओ.) किसकी सेवा करते हैं? इन संगठनों की "सेवा" की असलियत से अपरिचित कोई व्यक्ति अपनी मोटा-मोटी जानकारी के आधार पर यही कहेगा—"जनता की सेवा"। लेकिन ये जनता की सेवा किस तरह कर रहे हैं और इसके नाम पर असली सेवा किसकी कर रहे हैं, इसे जानने के लिए आइये सबसे पहले इनकी "जनसेवा" के एक नायाब नमूने से चर्चा की शुरुआत करें।

उत्तराखण्ड के अल्मोड़ा जिले में एड्स के उन्मूलन के लिए काम करने वाली एक स्वयंसेवी संस्था 'सहयोग' ने कुछ महीने पहले अपने बॉस और दानदाता संगठन "मैक आर्थर" को एक सर्वेक्षण रिपोर्ट भेजी—'उत्तराखण्ड में एड्स की सम्भावना'। बेहद अश्लील भाषा एवं बेहूदे अन्दाज में लिखी इस रिपोर्ट को पढ़कर कोई भी यही समझेगा कि उत्तराखण्ड स्वच्छन्द यौनाचार का अद्भुत है। संस्था से जुड़े "जनसेवकों" को अपने सर्वेक्षण में यह नहीं दिखायी दिया कि उसी उत्तराखण्ड में हजारों लोग टी.बी. और उल्टी-दस्त जैसी आम बीमारियों से मर रहे हैं। लेकिन एक करोड़ रुपये से अधिक वार्षिक बजट वाली इस संस्था को इससे क्या मतलब? उसे तो बजट पास कराने के लिए एड्स की प्रबल सम्भावनाओं को अपनी रिपोर्ट में दर्शाना था क्योंकि इसी बीमारी के उन्मूलन के नाम पर वे सेवा-कार्य कर रहे थे। दिलचस्प तथ्य यह है कि सरकारी सूत्रों के अनुसार पूरे उत्तराखण्ड में एड्स का एक भी ज्ञात रोगी नहीं है परन्तु इस क्षेत्र में इस तरह की दो स्वयंसेवी संस्थाएं काम कर रही हैं।

"सहयोग" का दुर्भाग्य यह कि यह रिपोर्ट एक पत्रकार के हाथ लग गयी और सार्वजनिक हो गयी। इसकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया के रूप

में उत्तराखण्ड की जनता इसके कर्ता-धर्ता अभिजीत दासगुप्ता को पकड़कर पीटने पर उतारू हो गयी थी। प्रशासनिक अधिकारियों का शुक्र कि मौके पर पहुंचकर उन्होंने दासगुप्ता, उसकी पत्नी एवं एक दर्जन कर्मचारियों को गिरफ्तार कर सुरक्षित जेल में पहुंचा दिया, वरना जनता का कोप कहर बन सकता था। बहरहाल, हालत यह हुई कि वकीलों के मंगठन के असहयोग के फैसले के कारण दासगुप्ता को जमानत के लिए वकील तक मिलना मुश्किल हो गया।

यह है इन संस्थाओं की कारस्तानियों की एक झलक। कोई कह सकता है कि यह तो अपवाद है। अधिकतर स्वयंसेवी संस्थाएं तो ईमानदारी से और पूरी कर्मठता के साथ सेवा-कार्य में लगी हुई हैं। लेकिन असलियत यह है कि यह तो स्वयंसेवी संस्थाओं के संजाल में लगे हुए लोगों के भ्रष्टाचार और छल-प्रपञ्च की एक छोटी-सी घटना मात्र है। सिर्फ इस घटना से उनके वास्तविक चरित्र एवं उनके असली मंसुबों के बारे में पता नहीं लगाया जा सकता। आइये, थोड़ी और गेहराई में छानबीन करें क्योंकि इनका कार्यक्षेत्र कहीं अधिक व्यापक और कार्यप्रणाली काफी बारीक है।

व्यवस्था विरोध का मुखौटा और किसिम-किसिम के सिद्धान्तों का भ्रमजाल

उत्तर से लेकर दक्षिण तक और पूर्व से लेकर पश्चिम तक, महानगरों से लेकर कस्बों और सूदूरवर्ती गांवों तक, जंगलों से लेकर पहाड़ों तक—देश का कोई भी हिस्सा आज अदृश्य नहीं बचा है, जहां एन.जी.ओ. की घुसपैठ नहीं हो चुकी है। साक्षरता प्रसार कार्यक्रम, विभिन्न स्वास्थ्य प्रोजेक्ट, विभिन्न प्रकार के पर्यावरण आन्दोलन, स्त्री सशक्तिकरण मुहिम साम्प्रदायिकता विरोधी मुहिम, विभिन्न

आदिवासी समूहों के आर्थिक-सामाजिक उत्थान के कार्यक्रम आदि विविध एवं बहुस्तरीय सामाजिक गतिविधियों में ये सक्रिय हैं। इसके साथ ही, अकादमिक जगत में भी इनकी घुसपैठ काफी गहरी है। पूरी दुनिया के स्तर पर स्वयंसेवी संगठनों के व्यावहारिक क्रियाकलापों को सैद्धान्तिक जामा पहनाने के लिए भाँति-भाँति के सिद्धान्तों, नवी-नवी प्रस्थापनाओं की अच्छी-खासी सप्लाई अकादमिक जगत के इन घुसपैठियों द्वारा लगातार जारी रहती है।

"जनता को हर काम के लिए सरकार का मुंह नहीं जोहना चाहिए," "जनता को खुद पहलकदमी लेनी चाहिए" आदि आकर्षक और प्रगतिशील-सी लगने वाली जुमलेबाजियों और नारों का प्रचार-प्रसार करते हुए स्वयंसेवी संगठन शिक्षा एवं स्वास्थ्य आदि मसलों पर जनता को जागरूक बनाने, स्कूल-अस्पताल चलाने, आर्थिक रूप से आव्वनिर्भर बनाने के लिए स्वयं सहायता समूहों का गठन करने जैसी तमाम सुधारपरक गतिविधियां संचालित कर जनता की पहलकदमी और सुजनात्मकता को विकसित करने का दम भरते हैं। लेकिन, सामाजिक उत्तरदायित्व के इन कामों को आखिर सरकार व्यों नहीं पूरा कर रही है? क्या हैं उसकी मजबूरियां और सीमाएं? इन बुनियादी सवालों के बारे में सोचने-विचारने से जनता को कोई मतलब नहीं रखना चाहिए—स्वयंसेवी संगठनों की सुधारपरक व्यावहारिक कार्रवाइयां और उनके पीछे निहित सिद्धान्तों का निचोड़ यही है।

सुधारपरक कार्रवाइयों के साथ-साथ अक्सर कई मुद्दों पर स्वयंसेवी संगठन कई "रैडिकल" (उग्र) दिखायी पड़ने वाले संघर्षों को भी संगठित करते हैं। दलित उत्पीड़न, स्त्री-उत्पीड़न, नागरिक एवं जनतांत्रिक अधिकारों से जुड़े मुद्दों, भ्रष्टाचार, पुलिसिया उत्पीड़न आदि से जुड़े मसलों पर स्थानीय प्रशासन के साथ और कभी-कभी सरकारों तक से संघर्ष में उत्तरते दिखायी पड़ते हैं। पर्यावरण आन्दोलन में इनकी भागीदारी का स्वरूप जगजाहिर है। लेकिन, ये सभी संघर्ष-आन्दोलन अलग-अलग रूप के स्थानीयतावाद के शिकार हैं। जन समस्याओं के कारण के रूप में अलग-अलग क्षेत्रों में नौकरशाही के अलग-अलग अंग, कभी कोई स्थानीय पतित तत्व, कभी कोई राजनीतिक पार्टी, कभी-कभी कोई प्रान्तीय सरकार और कभी-कभी केन्द्र सरकार को भी एक

तात्कालिक दुश्मन के रूप में सामने रखकर संघर्षों का संगठन किया जाता है। इससे व्यवस्था विरोध का एक छहम निर्भित होता है लेकिन इन संघर्षों की पाठशालाओं में जनसमुदाय वह चीज नहीं सीखता जिसकी आज सबसे अधिक जरूरत है—यानी अलग-अलग जन-समस्यायें, शोषण-उत्पीड़न के अलग-अलग रूप किस बुनियादी सूत्र से जुड़े हैं? क्या इनसे निजात पाने को कोई उपाय है?

आज महांगाई, बेकारी, अशिक्षा के साथ विभिन्न रूपों के

शोषण-उत्पीड़न से संत्रस्त

आम जनता को इन सीधे-सादे सवालों का जवाब चाहिए कि आखिर राजनीतिक आजादी मिलने की आधी सदी बाद भी आज क्यों बहुसंख्यक मेहनतकश जनता तबाह है? आंसुओं के समुद्र में विलासित के द्वीप कैसे खड़े हो रहे हैं? अध्यपतन की

चरमावस्था पर पहुंच चुकी पूंजीवादी चुनावी राजनीति का विकल्प क्या हो सकता है? ऐसे तपाम बुनियादी सवालों का जवाब तभी मिल सकता है जब देश की समूची आर्थिक-राजनीतिक-सामाजिक व्यवस्था के चरित्र पर रोशनी डाली जाये। उसके बुनियादी अन्तरविरोध और विसंगतियों को जनता के सामने उजागर करना और विकल्प का एक खाका पेश करना आज सबसे जरूरी कामों में से एक है। ठीक यहीं पर स्वयंसेवी संगठनों की असलियत और मंसूबों का पर्दाफाश होता है क्योंकि सुधार एवं संघर्ष की तमाम कार्रवाइयां संचालित करते हुए ठीक इन्हीं 'चीजों' को वे नजरों से ओझल करने की कोशिश करते हैं।

उत्पादन के साधनों पर निजी मालिकाने और बाजार एवं मुनाफे पर केन्द्रित मौजूदा उत्पादन प्रणाली के मौजूद रहते अशिक्षा, बेकारी, भुखमरी, स्त्री-पुरुष गैरबराबरी सहित सामाजिक गैरबराबरी के विभिन्न रूपों, राजनीतिक अधिकारविहीनता, राष्ट्रीयताओं के उत्पीड़न, आदिवासी जनसमूहों की त्रासदी आदि शोषण-उत्पीड़न के विभिन्न रूपों एवं वचनाओं को खत्म नहीं किया जा सकता। यह एक सीधी-सादी सच्चाई है। राजसत्ता के विभिन्न उपकरण, शासक वर्गों की राजनीतिक पार्टियां और सरकारें शोषण-उत्पीड़न पर आधारित इस

उत्पादन प्रणाली को हर सम्भव तरीके से बचाने की कोशिशों में लगातार जुटी रहती हैं। लेकिन इस समूचे ताने-बाने के आपसी सम्बन्धों के बारे में जनता के बीच व्यापक भ्रम मौजूद रहता है। उसके बीच मौजूद इन भ्रमों का निवारण सतत कान्तिकारी राजनीतिक शिक्षण-प्रशिक्षण और विविध स्तरों पर संघर्ष की अनवरत कार्रवाइयों द्वारा ही हो सकता है, जिससे जनता की चेतना उन्नत हो और वह समूची व्यवस्था को उखाड़ फेंकने की दिशा में आगे बढ़ सके। लेकिन, स्वयंसेवी

'बुर्जुआ वर्ग का एक हिस्सा इसलिए सामाजिक व्यथाओं को दूर करना चाहता है ताकि बुर्जुआ समाज को बरकरार रखा जा सके।'

-कार्ल मार्क्स-फ्रेडरिक एंगेल्स 'कम्पनिस्ट घोषणापत्र' में

जा सके और जनता अपनी वास्तविक मुक्ति के रास्ते से बिरत हो सके।

सुधार एवं संघर्ष की इन "जमीनी" कार्रवाइयों का सैद्धान्तिक औचित्य प्रतिपादन अकादमिक एवं बौद्धिक जगत के वे महारथी कर रहे हैं जो प्रगतिशीलता के आवरण में तरह-तरह के भ्रम फैलाने वाले बौद्धिक मालों का उत्पादन कर रहे हैं। इन मालों की खपत स्वयंसेवी संगठनों के कार्यकर्ता सुधार एवं संघर्ष की कार्रवाइयों के दौरान जनता के बीच सचेतन ढंग से करते रहते हैं।

पूंजीवादी राजनीतिक पार्टियों के भ्रष्टाचार एवं पतन से ऊबी जनता को हर प्रकार की राजनीति एवं राजनीतिक पार्टियों से दूर रहकर "अपनी खुद की पहलकदमी" बढ़ाने का नारा दिया जाता है। भ्रष्ट पूंजीवादी राजनीति को राजनीति का पर्यायवाची बनाकर प्रस्तुत करने से जनता के बीच शासक वर्ग की राजनीति और जनता की परिवर्तनकामी राजनीति की विभाजक रेखा मिट जाती है और इस तरह परिवर्तन के विचार से लैस किसी संगठन या राजनीतिक पार्टी को संगठित करने के प्रयासों को धक्का पहुंचता है। "निचले तबकों की पहलकदमी जगाने" का यह प्रगतिशील-सालगाने वाला सिद्धान्त समस्याओं के समाधान के लिए जनता की स्वतःस्फूर्त कार्रवाइयों को

ही सब कुछ मानता है और इस प्रकार वह जनता के संघर्षों के सर्वप्रमुख हथियार—एक क्रान्तिकारी राजनीतिक पार्टी की जरूरत को ही नकारकर व्यवस्था की हिफाजत में खड़ा होता है। अकादमिक जगत में 'सबाल्टन' इतिहासकारों की सोच का भी मूल केन्द्र बिन्दु यही है।

इसी प्रकार जैव विविधता एवं विभिन्न किस्म की पर्यावरणीय तबाहियां, खेती में रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग से मिट्टी की उर्वरा शक्ति में कमी आदि संकटों के कारणों के रूप में बाजार एवं मुनाफे की शक्तियों को या यूं कहें कि सीधे-सीधे मौजूदा पूंजीवादी-साम्राज्यवादी तंत्र को कटघरे में खड़ा करने के बजाय "प्रकृति की ओर लौटने" एवं "टिकाऊ खेती", "टिकाऊ विकास" आदि अवधारणाएं प्रस्तुत कर एक विज्ञान विरोधी, प्रकृति विरोधी एवं पुनरुत्थानवादी (यानी पीछे की ओर लौटने) दृष्टिकोण का प्रचार-प्रसार किया जाता है। चिन्तनीय यह है कि विकल्पहीनता में जी रहे और भविष्य के प्रति निराश पढ़ी-लिखी आबादी तक का अच्छा-खासा हिस्सा इन अवधारणाओं से आज प्रभावित भी हो रहा है।

इस तरह की ढेरों अवधारणाएं एवं किसिम-किसिम के विचार आज स्वयंसेवी संगठनों के "थिंक टैंक" थोक में प्रचारित कर रहे हैं, जिनके जनविरोधी व्यवस्थापोषक चरित्र का भाण्डा फोड़ने की आज जरूरत है। छात्रों-युवाओं के बीच इन पर व्यापक बहस-मुबाहसे की जरूरत है। यह अनायास नहीं है कि इस तरह की तमाम बौद्धिक एवं "जमीनी" कार्रवाइयों के लिए स्वयंसेवी संगठनों की दानदाता एजेंसियां भारी रकमें लुटा रही हैं।

दानवीर बने लुटेरों की जरूरतें और मजबूरियां

स्वयंसेवी संगठनों की दानदाता एजेंसियों में दुनियाभर के बहुराष्ट्रीय निगम, एकाधिकारी कम्पनियां, अकूत सम्पत्ति के मालिक ट्रस्ट एवं फाउण्डेशन और पूंजीवादी सरकारें होती हैं। दुनिया भर की जनता के लुटेरे इन संगठनों को भारी धनराशि इसलिए नहीं देते कि वे व्यवस्था का विरोध कर उन्हीं के लिए मुश्किल खड़ी करें। पूरे होशोहवास में जनबूझकर कोई भी कालिदास की मूर्खता नहीं करेगा कि जिस डाल पर बैठे उसी को काटने की कोशिश करें।

दरअसल, विश्वव्यापी पूँजीवादी लूटतंत्र की हिफाजत में लगे हुए बौद्धिक पहरेदार इस लूटतंत्र को धराशायी होने से बचाने के लिए नये-नये नुस्खों की तलाश में सतत सचेष्ट रहते हैं। दुनिया के वे हिस्से जहां क्रान्तिकारी विस्फोटों की सम्भावनाएं दिखायी देती रही हैं वहां सुनियोजित ढंग से स्वयंसेवी संगठनों का व्यापक ताना-बाना खड़ा करने की कोशिशें पिछली सदी के आठवें दशक में ही शुरू हो गयी थीं। लातिनी अमेरिकी देशों में एन.जी.ओ. नेटवर्क की जकड़न और उनकी कारगुजारियां आज बेनकाब हो चुकी हैं। लेकिन भूमण्डलीकरण के दौर की शुरुआत के बाद एन.जी.ओ. नेटवर्क में अभूतपूर्व विस्तार हुआ है और आज यह एक विश्वव्यापी नेटवर्क का रूप ले चुका है।

भूमण्डलीकरण के मौजूदा दौर में अपने संकर्तों के कारण दुनिया के तमाम पूँजीवादी राज्य अपने "कल्याणकारी" मुख्यों को उतारकर निर्लञ्जतापूर्वक शिक्षा, स्वास्थ्य आदि सामान्य जनसुविधाओं का तेजी से बाजारीकरण कर रहे हैं। निजीकरण एवं ढांचागत समायोजन कार्यक्रमों से बेरोजगारों की तादाद में भी बेतहाशा बढ़ोत्तरी होती जा रही है। इन नीतियों की विनाशलीला के शिकार आम जन में अन्दर ही अन्दर गुस्सा एवं असन्तोष खदबदा रहा है और समूचे एशिया-अफ्रीका-लातिनी अमेरिका में जनाक्रोश के बारूद का पलीता सुलगता जा रहा है। कहा नहीं जा सकता कि कब यह पलीता सुलग उठे और जनाक्रोश का विस्फोट जनविरोधी सत्ताओं को खाक कर दे। ऐसे में, विश्व पूँजीवादी तंत्र एन.जी.ओ. को एक 'सेप्टी वाल्च' के रूप में इस्तेमाल कर रहा है जिससे जनाक्रोश के दाब को कम किया जा सके और भावी विस्फोटों को टाला जा सके।

एक तरह से देखा जाये तो स्वयंसेवी संगठन पूँजीवादी राज्य की भूमिका का स्थानापन बनते जा रहे हैं। जिन सामाजिक जिम्मेदारियों को पूँजीवादी राज्य आज तिलांजिलि दे रहे हैं, एन.जी.ओ. सेक्टर उन्हें बढ़कर अपने हाथ में ले रहे हैं। इस तरह राज्य और जनता के गुस्से के बीच एक ढाल बनकर खड़े हो जा रहे हैं।

आज के विश्व पूँजीवादी तंत्र की इस जरूरत और मजबूरी ने ही स्वयंसेवी संगठनों के लिए अरबपति "दानवीरों" के खजाने खोल दिये हैं। जाहिर है, इतनी महत्वपूर्ण सेवा के बदले में भारी बछारीश तो उन्हें मिलनी ही

चाहिए। और सेवा भी कैसी-सान्ताकलाज के चोगे में शैतान के चेहरे को छुपाना। विश्व पूँजीवादी तंत्र के दाग-धब्बों पर रंगेगन करना।

क्रान्तिकारी आन्दोलन के भरती केन्द्रों पर सेंधमारी

सुधार एवं "संघर्ष" की विभिन्न कार्यवाइयों के जरिये जनता की व्यवस्था विरोधी चेतना कुन्द करने के साथ-साथ स्वयंसेवी संगठन एक अन्य तरीके से पूँजीवाद-साम्राज्यवाद की बेहतरीन सेवा कर रहे हैं और देश के क्रान्तिकारी आन्दोलन के समक्ष गम्भीर चुनौती उपस्थित कर रहे हैं। ये अपने कार्यकर्ताओं की भर्ती भी उन्हीं केन्द्रों से कर रहे हैं, जहां से क्रान्तिकारी आन्दोलन की फौजों की भर्तियां हुआ करती हैं।

अपनी जीवन

स्थितियों के कारण

सुधारवाद की तरफ स्वाभाविक रुझान रखने वाले मध्य वर्ग-उच्च मध्य वर्ग के संवेदनशील छात्र-नौजवान हमेशा ही क्रान्तिकारी विचारों के प्रचार-प्रसार से प्रभावित हो अपने सुधारवादी विभ्रमों से पीछा छुड़ाकर कठिन क्रान्तिकारी जीवन जीने के लिए तैयार होते रहे हैं और क्रान्तिकारी आन्दोलन के संगठनकर्ता-कार्यकर्ता बनते रहे हैं। लेकिन आज इनकी तादाद में कमी को स्पष्टतः महसूस किया जा सकता है। मौजूदा दौर के गतिविधि-उहराव के प्रमुख कारण के अतिरिक्त यह कारण भी आज काफी महत्वपूर्ण है कि इनके बीच से एक अच्छी-खासी आबादी स्वयंसेवी संगठनों की ओर आकर्षित हो विभिन्न सुधारपरक कार्यवाइयों से सन्तुष्ट है। सामाजिक बदलाव का एन.जी.ओ. का "शार्टकट" और सुगम रास्ता उन्हें काफी रास आ रहा है। जनता के स्रोत-संसाधनों पर निर्भर रहकर क्रान्तिकारी जीवन के कट्टों-मुसीबतों को झेलते हुए जनता की सेवा करने के बजाय हर माह बंधी-बंधायी रकम पाते हुए "जनता की सेवा" करने का सुरक्षित रास्ता भला क्यों न सुहायेगा?

संवेदनशील मध्यवर्गीय नौजवानों में पिटे-पिटाये ढंग से जीवन जीने के बजाय

कुछ नये ढंग से जीवन जीने की एक स्वाभाविक चाहत होती है जिसमें "टेबुल वर्क" या रूटीनी कामों की बोरियत न हो। अपनी वर्गीय स्थिति के चलते वे कुछ ऐसे काम भी नहीं कर सकते जिन्हें "निचले दर्जे का काम" कहा जाता है। ऐसे में, एन.जी.ओ. एक मनचाहा और सुविधाजनक रास्ता उपलब्ध करा रहे हैं। आज पत्रकारिता और बौद्धिक जगत की अन्य नौकरियों का जैसे-जैसे टोटा होता जा रहा है वैसै-वैसे इन मध्यवर्गीय नौजवानों में एन.जी.ओ. के प्रति आकर्षण तेजी से बढ़ता जा रहा है।

यही नहीं, निम्न मध्य वर्ग और गरीब तबकों के छात्र भी स्वयंसेवी संगठनों के चंगुल में हैं। बढ़ती बेरोजगारी ने भविष्य के प्रति जो बीहड़ अनिश्चितता पैदा की है उससे गरीब मेहनतकर्शों के घरों से आने वाले तेज-तरार छात्र-छात्राओं को भी एन.जी.ओ. अपनी ओर खींच रहे हैं। इस तरह बेरोजगारों की फौज में से बेरोजगारी भत्ते से भी कम बेतन पर उन्हें भारी संख्या में कर्मचारी उपलब्ध हो जा रहे हैं। इस तरह, एन.जी.ओ. क्रान्तिकारी आन्दोलन के तमाम सम्भावना-सम्पन्न भरती केन्द्रों पर जबर्दस्त सेंधमारी कर रहे हैं।

"...दान दोहरा अभिशाप है : यह दाता को संगदिल और प्राप्तकर्ता को भरमदिल बनाता है। यह गरीबों का शोषण से कहीं अधिक नुकसान करता है, क्योंकि यह उन्हें शोषित हाने का इच्छुक बनात है। यह दास भावना को जन्म देता है, जो नैतिक आत्महत्या ही है।"

-बक व्हाइट, अमरीकी पादरी (भगतसिंह की जेल नोटबुक में उन्हें)

सावधान! "दानवीरों" के टुकड़ों पर पलकर समाज नहीं बदला जा सकता

जब से सरकार ने विश्वविद्यालयों से कहा है—"अपने संसाधनों को स्वयं जुटाओ" और शोध संस्थानों के अनुदानों में भारी कटौती की है, तब से आर्थिक संसाधनों के लिए तमाम शोध संस्थान, विश्वविद्यालय और बौद्धिक गतिविधियों के तमाम केन्द्र स्वयंसेवी संगठनों का मुंह ताकने लगे हैं। हालत यह है कि आप हर एन.जी.ओ. के दरवाजे पर शोध संस्थानों के निदेशकों और विभागाध्यक्षों को कटोरा लेकर खड़े पा सकते हैं। "विद्रोही तेवर" वाले बुद्धिजीवी भी आपको इन संगठनों के दरवाजे भीख मांगते और बड़ी बारीकी के साथ साम्राज्यवादियों के पक्ष में बौद्धिक कार्यों को अंजाम देते मिल जायेंगे।

(शेष पृष्ठ 40 पर)

सम्पन्न हुए बल्कि इस दुर्गति के लिए सीधे जिम्मेदार व्यवस्था पोषक व 'साइबर' नायक चन्द्रबाबू नायदू फिर से प्रचण्ड बहुमत के साथ सत्ता पर सवार हुए। मास-मीडिया के मूढ़ चन्द्र बाबू नायदू की चुनावी सफलता का श्रेय उनके "सुशासन" और तकनीकी लटकों-झटकों को देता है और उन्हें 'साइबराबाद' का मुख्य कार्यकारी मानते हैं जो कि अपनी सरकार को सुचना व संचारतंत्र द्वारा चलाना चाहते हैं।

जब एक तरफ हैदराबाद अभ्यासान तकनीकी शब्दवाली, विश्व के महाबली नेता के भाषणों से बलबला रहा था, उसी समय आनंद के किसानों के समक्ष पूंजीवाद के सेवक विज्ञान का जन-विरोधी चेहरा और भी धिनौने रूप में नुमाया हो उठा। कर्ज में ढूबे हुए इस प्रदेश के किसानों

से कर्ज की वसूली को सम्भव बनाने के निमित्त विज्ञान के एक और टहलते—चिकित्सक परिदृश्य पर बौद्धिक वेश्यावृत्ति करते नजर आये। इन चिकित्सकों की मदद से गुंटूर जिले के रेन्टाचिन्टाल गांव के 26 किसानों ने अपने गुर्दे एक ऐसे व्यक्ति को बेच दिये जो कि मानव अंगों का ही व्यापार करता है। इन किसानों के अतिरिक्त 100 से अधिक अन्य किसान भी अपने गुर्दे बेचना चाहते थे तथा आपरेशन से पहले चिकित्सकीय परीक्षण के लिए हाजिर भी हुए थे।

दरअसल कोई भी प्रौद्योगिकी हो—संचार, सुचना या चिकित्सा—पूंजीवादी व्यवस्था में सभी वैज्ञानिक कार्यकलाप पूंजी के चाकर हो चुके हैं। यही वजह है कि एक चिकित्सक, मात्र

भुगतान पाने पर तनिक भी सोचे बिना न केवल 26 गुर्दे निकाल देता है बल्कि व्यापारी के लिए ऐक भी कर देता है मानो यह मुर्गी के 26 अण्डे हों। यहां तक कि एक ही प्रौद्योगिकी पूंजीवादी व्यवस्था के विविध पायदानों पर खड़े लोगों से भिन्न-भिन्न बरताव करती है। यही वजह है कि हैदराबाद को 'साइबराबाद' बनाने वाली बुनियादी सुविधा—बिजली की 'लो वोल्टेज' आपूर्ति ही कुछ किसानों को आत्महत्या के लिए मजबूर कर चुकी है।

अथः एक बार फिर यही तथ्य साफ तौर पर उभरता है कि पूंजी की दुम से बंधा विज्ञान मानवीय संवेदनशून्य और अन्तः जन विरोधी ही हो सकता है।

● **मुक्तिबोध मंच, पन्ननगर**

स्वयंसेवी संगठनों से सावधान

(पृष्ठ 21 का शेष)

एन.जी.ओ. तंत्र का आज हमारे आम जीवन में काफी विस्तार होता जा रहा है। कुकुरमुत्तों की तरह स्वयंसेवी संगठन आज गली-मुहल्लों तक में उग रहे हैं। जो भी थोड़े दिन एन.जी.ओ. में काम करने का अनुभव प्राप्त कर ले रहा है, प्रोजेक्ट कांख में दबाये घूम रहा है—इस उम्मीद में कि कभी तो किसित का तारा चमकेगा। इसमें कोई भ्रम नहीं होना चाहिए कि ऐसे संगठन आज ठगों, भ्रष्टाचारियों और धोखेबाजों का स्वर्ग बने हुए हैं। ये क्रान्तिकारी शक्ति होने का भ्रम पैदा कर समाज के उन्नत तत्त्वों को खींच रहे हैं। तमाम ईमानदार नौजवान समाज-सेवा के भ्रमों का शिकार हो इनके चंगुल में फंस रहे हैं और ये संस्थाएं उनकी संवेदनशीलता और सदिच्छाओं का भरपूर दुरुपयोग कर रही हैं।

आज 'सहयोग' जैसी लाखों पतित एवं घृणास्पद स्वयंसेवी संस्थाएं भारत में सक्रिय हैं और अपने 'साम्राज्यवादी आकाओं' के मंसूबों को पूरा करने और उनके सिंहासन को बचाये रखने के काम में लगी हुई हैं। ऐसे में आज नौजवानों के लिए यह बेहद जरूरी है कि वे एन.जी.ओ. के साम्राज्यवादी कुचक्कों को समझें और यह समझें कि साम्राज्यवादियों की छत्रछाया में और उनके टुकड़ों पर पलने वाली स्वयंसेवी संस्थाओं का वेतनभोगी बनकर समाज को नहीं बदला जा सकता। समाज में कोई भी परिवर्तन सिर्फ और सिर्फ जनता के खून-पसीने के दम पर और उसके द्वारा शोषक-उत्पीड़क व्यवस्था के ध्वंस द्वारा ही लाया जा सकता है।

इतिहास के साथ एक बदसलूकी यह भी

(पृष्ठ 26 का शेष)

दी।" (संस्मृतियां पृ. 97)

उक्त उद्धरण न केवल राजगुरु की संस्कृत शिक्षा की कथित 'तर्कतीर्थ' उपाधि वरन् तत्कालीन संस्कृत शिक्षा के पुरोधाओं की लोलुपता और गर्हित निकृष्टता की पोल भी खोल देता है। क्या राजगुरु संस्कृत शिक्षा की वकालत कर इन घाघ मकड़ों का जाल मजबूत करने का प्रयास कर भी सकते थे? इसका निर्णय पाठकों पर छोड़ता हूँ।

फिर 'संस्कृति सत्य' के इस प्रयास का निहितार्थ क्या है? यही कि राजगुरु जैसे प्रखर समाजवादी को पुनरुत्थानवादी साबित कर अपने कठपुल्ला उद्देश्यों में विश्वसनीयता पैदा की जाये तथा शहीदों के बीच भी कृत्रिम अलगाव पैदा किया जाये।

एक बार हम फिर शिवर्वमा वर्णित राजगुरु की जीवनी पर आते हैं—“छह वर्ष की अवस्था में राजगुरु के पिता का देहान्त हो गया था। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में उन्होंने घर छोड़ दिया था। उनकी संस्कृत शिक्षा का अन्त आप ऊपर पढ़ चुके हैं। इसके बाद चार-पांच वर्षों तक क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में ही नहीं रहे वरन् सक्रिय रहे। उस दौरान उनकी सक्रियता का अहसास इसी से हो जाता है कि उस दौरान दल के सबसे अहम

ऐक्षण—'साण्डर्स वध' के मुख्य कर्ता थे। इसके बीच में वे कुछ समय एक प्रूनिसपल स्कूल के 'डिल मास्टर' भी रहे थे।" अब वचनेश त्रिपाठी जी ने तय कर लिया कि राजगुरु संस्कृत का प्रचार करें तो उन्हें करना ही पड़ा। अफसोस होता है कि जिस व्यक्ति को जीते जां समूची ब्रिटिश सत्ता नहीं झुका सकी, मौत के बाद एक कलमनवीस अपनी अंगुली के झटकों से उसके व्यक्तित्व में मननाहो तोड़-मरोड़ पैदा कर रहा है।

वचनेश त्रिपाठी जी! जिस प्रकार पांच गोलियां जाया होने पर आप दुखी हो रहे हैं, मुझे लगा जैसे 'सरकारी 'आडिटरों' का दल 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातांत्रिक संघ' के दस्तावेजों की जांच कर रहा है तथा उसकी जांच में यह नुकस मिला कि भगतसिंह पर पांच गोलियां बकाया हों। हमारा कहना यह है कि वचनेश जी कि भगतसिंह की क्रान्तिकारी परम्परा के उत्तराधिकारियों पर केवल पांच गोलियां ही नहीं इस मुल्क के मजलूमों-गरीबों की मुक्तम्ल आजादी ही बकाया है, जिसका जिम्मा उन्हें इतिहास ने सौंप रखा है। साथ ही यह जिम्मा भी कि गोएबल्स के उत्तराधिकारियों को इतनी गहराई में दफन कर दें कि वे फिर से कब्र से बाहर न आ सकें। ●

इंकलाब के लिए जरूरी है एक इंकलाबी पार्टी

और इंकलाबी पार्टी के लिए जरूरी है एक इंकलाबी अखबार

पढ़िए नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिंगुल मूल्य : तीन रुपए

सम्पादकीय कार्यालय : 69, बाबा का पुरावा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ